तक़सीम

हिन्दी ADDA

गुलजार

तक़सीम

जिन्दगी कभी-कभी जख्मी चीते की तरह छलाँग लगाती दौड़ती है, और जगह जगह अपने पंजों के निशान छोड़ती जाती है। जरा इन निशानों को एक लकीर से जोड़ के देखिए तो कैसी अजीब तहरीर बनती है।

चौरासी-पिचासी **(84-85)** की बात है जब कोई एक साहब मुझे अमृतसर से अक्सर खत लिखा करते थे कि मैं उनका 'तंकसीम' में खोया हुआ भाई हूं। इकबाल सिंह नाम था उनका और गालेबन खालसा कॉलिज में प्रोफेसर थे। दो चार खत आने के बाद मैंने उन्हें तफसील से जवाब भी दिया कि मैं तकसीम के दौरान देहली में था और अपने माता-पिता के साथ ही था, और मेरा कोई भाई या बहन उन फिसादों में गुम नहीं हुआ था, लेकिन इकबाल सिंह इसके बावजूद इस बात पर बजिद रहे कि मैं उनका गुमशुदा भाई हूं। और शायद अपने बचपन के वाकेआत से नावाकिफ हूं या भूल चुका हूं। उनका खयाल था कि मैं बहुत छोटा था जब एक काफिले के साथ सफर करते हुए गुम हो गया था। हो सकता है कि जो लोग मुझे बचाकर अपने साथ ले आये थे, उन लोगों ने बताया नहीं मुझे, या मैं उनका इतना एहसानमन्द हूं कि अब कोई और सूरत-ए-हाल मान लेने के लिए तैयार नहीं। मैंने यह भी बताया था उन्हें कि 1947 में इतना कम उम्र भी नहीं था। करीब ग्यारह बरस की उम्र थी मेरी। लेकिन इकबाल सिंह किसी सूरत मानने के लिए तैयार नहीं थे। मैंने जवाब देना बन्द कर दिया। कुछ अरसे बाद खत आने भी बन्द हो गये।

करीब एक साल गुजरा होगा कि बम्बई की एक फिल्मकार, संई परांजपे से उनका एक पैगाम मिला। कोई हर भजन सिंह साहब हैं देहली में, मुझसे बम्बई आकर मिलना चाहते हैं। मुलाकत क्यों करना चाहते हैं, इसकी वजह संई ने नहीं बतायी, लेकिन कुछ भेद भरे सवाल पूछे जिनकी मैं उनसे उम्मीद नहीं करता था। पूछने लगीं

"तकसीम के दिनों में तुम कहाँ थे**?**"

"देहली में" मैंने बताया। "क्यों**?**"

"यूँ ही।"

संई बहुत खूबसूरत उर्दू बोलती हैं, लेकिन आगे अँग्रेजी में पूछा

"और वालिदेन तुम्हारे**?**"

"देहली में थे। मैं साथ ही था उनके, क्यों**?**"

थोड़ी देर बात करती रही, लेकिन मुझे लग रहा था जैसे अँग्रेजी का परदा डाल रही है बात पर, क्योंकि मुझ से हमेशा उर्दू में बात करती थी जिसे वह हिंदी कहती है। संई आखिर फूट ही पड़ीं।

"देखो गुलंजार यूँ है कि आई ऐम नाट एपोज्ड टू टैल यू, लेकिन देहली में कोई साहब हैं जो कहते हैं कि तुम तकसीम में खोए हुए उनके बेटे हो"।

यह एक नई कहानी थी।

करीब एक माह बाद बम्बई के मशहूर अदाकर अमोल पालेकर का फोन आया। कहने लगे-

"मिसेज दण्डवते तुम से बात करना चाहती हैं। देहली में हैं।"

"मिसेज दण्डवते कौन?" मैंने पूछा।

"ऐक्स फाइनेंस मिनिस्टर ऑफ जनता गवरनमेंट, मिस्टर मधू दण्डवते की पत्नी।"

"वह क्यों?"

"पता नहीं! लेकिन वह किसी वक्त तुम्हें कहाँ पर फोन कर सकती हैं?"

मेरा काई सरोकार नहीं था मिस्टर या मिसेज मधु दण्डवते के साथ। कभी मिला भी नहीं था। मुझे हैरत हुई। अमोल पालेकर को मैंने दफ्तर और घर पर मिलने का वक्त बता दिया।

अफसाना बल खा रहा था। मुझे नहीं मालूम था यह भी उसी संई वाले अफसाने की कड़ी है, लेकिन अमोल चूँकि अदाकार हैं और अच्छा अदाकार अच्छी अदाकारी कर गया और मुझे इसकी वजह नहीं बतायी?, लेकिन मुझे यकीन है कि वह उस वक्त भी वजह जानता होगा।

कुछ रोज बाद प्रमिला दण्डवते का फोन आया। उन्होंने बताया कि देहली से एक सरदार हरभजन सिंह जी बम्बई आकर मुझसे मिलना चाहते हैं क्योंकि उनका खयाल

है कि मैं तकसीम में खोया हुआ उनका बेटा हूं। वह नवम्बर का महीना था। इतना याद है। मैंने उनसे कहा मैं जनवरी में देहली आ रहा हूं। इंटरनेशनल फिल्म उत्सव में। दस जनवरी में देहली में हूंगा, तभी मिल लूँगा। उन्हें यहाँ मत भेजिए। मैंने उनसे यह भी पूछा कि सरदार हरभजन सिंह कौन है? उन्होंने बताया जनता राज के दौरान वह पंजाब में सिविल सप्लाई मिनिस्टर थे। जनवरी में देहली गया। अशोका होटल में ठहरा था। हरभजन सिंह साहब के यहाँ से फोन आया कि वह कब मिल सकते हैं। तब तक मुझे यह अन्दाजा हो चुका था कि वह कोई बहुत आस्थावान बुजुर्ग इनसान हैं। बात करने वाले उनके बेटे थे। बड़ी इंज्जत से मैंने अर्ज किया:

"आज उन्हें जेहमत न दें। कल दोपहर के वक्त आप तशरीफ लावें। मैं आपके साथ चल कर उनके दौलतखाने पर मिल लूँगा।

हैरत हुई यह जानकर कि संई भी वहाँ थी, अमोल पालेकर भी वहीं थे और मेरे अगले रोज की इस एपोइंटमेन्ट के बारे में वह दोनों जानते थे।

अगले रोज दोपहर को जो साहब मुझे लेने आये वह उनके बडे बेटे थे। उनका नाम इकबाल सिंह था।

पंजाबियों की उम्र हो जाती है लेकिन बूढ़े नहीं होते। उठकर बड़े प्यार से मिले! मैंने बेटे की तरह ही "पैरी पौना" किया। उन्होंने मां से मिलाया।

"यह तुम्हारी मां है, बेटा"

मां को भी "पेरी पोना" किया। बेटे उन्हें दार जी कह के बुलाते थे। दूसरे बेटे, बहुएं, बच्चे अच्छा खासा एक परिवार था। काफी खुला बड़ा घर। यह खुलापन भी पंजाबियों के रहन सहन में ही नहीं, उनके मिजाज में भी शामिल है।

तमाम रस्मी बातों के बाद कुछ खाने को भी आ गया, पीने को भी आ गया और दार जी ने बताया कि मुझे कहाँ खोया था।

"बड़े सख्त दंगे हुए जी हर तरफ आग ही आग थी और आग में झुलसी हुई खबरें, पर हम भी टिके ही रहे। जमींदार मुसलमान था और हमारे पिताजी का दोस्त था और

बड़ा मेहरबान था हम पर और सारा कस्बा जानता था कि उसके होते कोई बेवंक्त हमारे दरवांजे पर दस्तक भी नहीं दे सकता। उसका बेटा स्कूल में मेरा साथ पढ़ा था (शायद अयाज नाम लिया था) लेकिन जब पीछे से आने वाले काफिले हमारे कस्बे से गुजरते थे तो दिल दहल जाता था। अन्दर ही अन्दर काँप जाते थे हम। जमींदार रोज सुबह और शाम को आकर मिल जाता था। हौसला दे जाता था। मेरी पत्नी को बेटी बना रखा था उसने।

एक रोज चीखता-चिल्लाता एक ऐसा कांफिला गुंजरा कि सारी रात छत की मुंडेर पर खडे गुजरी। हमीं नहीं सारा कस्बा जाग रहा था। लगता था वही आखिरी रात है, सुबह प्रलय आने वाली है। हमारे पा/व उखड़ गये। पता नहीं क्यों लगा कि बस यही आखिरी कांफिला है। अब निकल लो। इसके बाद कुछ नहीं बचेगा। अपने मोहसिन, अपने जमींदार से दगा करके निकल आये।"

वह रोज कहा करता था

"मेरी हवेली पर चलो, मेरे साथ रहो। कुछ दिन के लिए ताला मार दो घर को। कोई नहीं छुएगा।" लेकिन हम झूठमूठ का हौसला दिखाते रहे। अन्दर ही अन्दर डरते थे। सच बताऊँ सम्पूर्ण काका ईमान हिल गये थे, जड़ें काँपने लगी थीं। सारे कफिले उसी रास्ते से गुजर रहे थे। सुना था मियाँवली से हो के जम्मू में दाखिल हो जाओ तो आगे नीचे तक जाने के लिए फौज की टुकड़ी मिल जाएगी।

घर वैसे के वैसे ही खुले छोड़ आये। सच तो यह है कि दिल ने बांग दे दी थी, अब वतन की मिट्टी छोड़ने का वक्त आ गया। कूच कर चलो। दो लड़के बड़े, एक छोटी लड़की आठ साल नौ साल की और सब से छोटे तुम! दो दिन का सफर था मियाँवाली तक पैदल। खाने को जिस गाँव से गुजरते कुछ न कुछ मिल जाता था। दंगे सब जगह हुए थे, हो भी रहे थे लेकिन दंगेवालों के लश्कर हमेशा बाहर ही से आते थे। मियाँवाली तक पहुँचते-पहुँचते कांफिला बहुत बड़ा हो गया। कई तरफ से लोग आ-आकर जुड़ते जाते थे। बड़ी ढाढ़स होती थी बेटा, अपने जैसे दूसरे बदहाल लोगों को देखकर। मियाँवाली हम रात को पहुँचे। इसी बीच कई बार बच्चों के हाथ छूटे हम से, बदहवास होकर पुकारने लगते थे। और भी थे वो हम जैसे, एक कोहराम सा मचा रहता था।

"पता नहीं कैसे यह खबर फैल गयी कि उस रात मियाँवली पर हमला होने वाला है। मुसलमानों का लश्कर आ रहा हैखौफ और डर का ऐसा सन्नाटा कभी नहीं सुनारात की रात ही सब चल पड़े।

दार जी कुछ देर के लिए चुप हो गये। उनकी आँखें नम हो रही थीं। लेकिन मां चुपचाप टकटकी बांधे मुझे देखे जा रही थी। कोई इमोशन नहीं था उनके चेहरे पर। दार जी बड़े धीरे से बोले :

"बस उसी रात उस कूच में छोटे दोनों बच्चे हम से छूट गये। पता नहीं कैसे? पता हो तो..."

"तो..."

वह जुमला अधूरा छोड़कर चुप हो गये।

मुझे बहुत तफसील से याद नहीं बेटे, बहुए कुछ उठीं। कुछ जगहें बदल के बैठ गये। दार जी ने बताया

"जम्मू पहुंचकर बहुत अरसा इन्तंजार किया। एक-एक कैम्प जाकर ढूँढते थे और आने वाले कांफिलों को देखते थे। बेशुमार लोग थे जो काफिला की शक्ल में ही कुछ पंजाब की तरफ चले गये, कुछ नीचे उतर गये। जहां-जहां जिस किसी के रिश्तेदार थे। जब मायूस हो गये हम, तो पंजाब आ गये। वहां के कैम्प खोजते रहे। बस एक तलाश ही रह गयी। बच्चे गुम हो चुके थे, उम्मीद छूट चुकी थी।"

बाइस साल बाद एक जत्था हिन्दुस्तान से जा रहा था। गुरुद्वारा पंजा साहब की यात्रा करने बस दर्शन के लिए। अपना घर देखने का भी कई बार खयाल आया था लेकिन यह भली मानस हमेशा इस ंखयाल से ही टूट के निढाल हो जाती थी। उन्होंने अपनी बीवी की तरफ इशारा करते हुए कहा

"और फिर यह गिल्ट भी हम से छूटा नहीं कि हमने अपने कस्बे के जमींदार का ऐतबार नहीं किया, सोच के एक शर्मिन्दगी का एहसास होता था।

"बहरहाल हमने जाने का फैसला कर लिया, और जाने से पहले मैंने एक खत लिखा जमींदार के नाम और उनके बेटे अयांज के नाम भी, अपने हिजरत के हालात भी बताये, परिवार के सभी और दोनों गुमशुदा बच्चों का जिक्र भी कियासत्या और सम्पूर्ण का। खयाल था शायद अयाज तो न पहचान सके, लेकिन जमींदार अफजल हमें नहीं भूल सकता। खत मैंने पोस्ट नहीं किया, सोचा वहीं जा के करूँगा। बीस पच्चीस दिन का दौरा है अगर मिलना चाहेगा तो चाचा अफजल जरूर जवाब देगा। बुलवाया तो जाएंगे, वरनाअब क्या फायदा कबरें खोल के? क्या मिलना है?"

एक लम्बी सांस लेकर हरभजन सिंह जी बोले:

"वह खत मेरी जेब ही में पड़ा रहा पन्ना जीमन माना ही नहीं। वापसी में कराची से होकर आया और जिस दिन लौट रहा था, पता नहीं क्या सूझी, मैंने डाक में डाल दिया।"

"न चाहते हुए भी एक इन्तजार रहा, लेकिन कुछ माह गुजर गये तो वह भी ंखत्म हो गया। आठ साल के बाद मुझे जवाब आया।" "अफजल चाचा का?" मैंने चौंक कर पूछा। वह चुप रहे। मैंने फिर पूछा, "अयाज का?" सर को हलकी-सी जुम्बिश देकर बोले, "हां! उसी खत का जवाब था। खत से पता चला कि तकसीम के कुछ साल बाद ही अफजल चाचा का इन्तकाल हो गया था। सारा जमींदारा अयाज ही संभाला करता था। चन्द रोज पहले ही अयाज का इन्तकाल हुआ था। उसके कागंज-पत्तर देखे जा रहे थे तो किसी एक कमीज की जेब से वह खत निकला। मातमपुरसी के लिए आये लोगों में किसी ने वह खत पढ़के सुनाया, तो एक शख्स ने इत्तला दी कि जिस गुमशुदा लड़की का जिक्र है इस खत में वह अयांज के इन्तकाल पर मातमपुरसी करने आयी हुई है मियाँवाली से। उसे बुलाकर पूछा गया तो उसने बताया कि उसका असली नाम सत्या है। वह तकसीम में अपने मां बाप से बिछुड़ गयी थी और अब उसका नाम दिलशाद है।"

मां की आँखें अब भी खुश्क थीं, लेकिन दारजी की आवांज फिर से रुँध गयी थी। "वाहे गुरु का नाम लिया और उसी रोज रवाना हो गये। दिलशाद वहीं मिली, अफजल चाचा के घर। लो जी उसे सब याद था। पर अपना घर याद नहीं। हमने पूछा, वह खोयी कैसे?

बिछड़ी कैसे हम से, तो बोली"मैं चल चल के थक गयी थी। मुझे बहुत नींद आ रही थी। मैं एक घर के आँगन में तन्दूर लगा था उसके पीछे जाके सो गयी थी। जब उठी तो कोई भी नहीं था। सारा दिन ढूंढ के फिर वहीं जाके सो जाती थी। तीन दिन बाद उस घरवाले आये तो उन्होंने जगाया। मियाँ बीवी थे। फिर वहीं रख लिया कि शायद कोई ढूंढता हुआ आ जाए। पर कोई आया ही नहीं। उन्हीं के घर नौकरानी-सी हो गयी। खाना कपड़ा मिलता था। पर बहुत अच्छी तरह रखा उसनेफिर बहुत साल बाद, शायद आठ नौ साल बाद मालिक ने मुझ से निकाह पढ़ाके अपनी बेगम बना लिया। अल्लाह के फजल से, दो बेटे हैं। एक पाकिस्तान एयरफोर्स में है, दूसरा कराची में अच्छे ओहदे पर नौकरी कर रहा है।"

राईटर्स को कुछ किलिशे किस्म के सवालों की आदत होती है, जिसकी ंजरूरत नहीं। "वह हैरान नहीं हुई आपको देखकर? या मिलकर? रोयी नहीं?"

"नहींहैरान तो हुई, लेकिन ऐसी कोई खास प्रभावित नहीं हुई।"

दार जी ने कहा"बल्कि जब भी सोचता हूं उसके बारे में तो लगता है, बार-बार मुस्करा देती थी हमारी बातें सुनकर, जैसे हम कोई कहानी सुनाने आये हैं। उसे लगा नही कि हमी उसके मां बाप है।"

"और सम्पूरन?उसके साथ नहीं थी?"

"नहीं उसे तो याद भी नहीं।"

मां ने फिर वही कहा जो इन बातों के दरमियान दो तीन बार कह चुकी थी, "पिन्नी (सम्पूरन) तू मान क्यूँ नहीं जाता। क्यों छुपाता है हम से। अपना नाम भी छुपा रखा है तूने। जैसे सत्या दिलशाद हो गयी, तुझे भी किसी ने गुलंजार बना दिया होगा।" थोड़े से वक्फे के बाद फिर बोली"गुलंजार किस ने नाम दिया तुझे? नाम तो तेरा सम्पूरन सिंह है।"

मैंने दार जी से पूछा"मेरी खबर कैसे मिली आपको। या कैसे खयाल आया कि मैं आपका बेटा हूं**?"**

"ऐसा है पुत्तर, वाहे गुरु की करनी तीस-पैंतीस साल बाद मिल गयी, तो उम्मीद बँध गयी शायद वाहे गुरु बेटे से भी मिला दें। इकबाल ने एक दिन तुम्हारा इंटरव्यू पढ़ा किसी परचे में और बताया तुम्हारा असली नाम सम्पूरन सिंह है और तुम्हारी पैदाइश भी उसी तरफ की है पाकिस्तान की तो, उसने तलाश शुरू कर दी। हाँ मैंने यह नहीं बताया तुम्हें कि उसका नाम इकबाल अफंजल चाचा का दिया हुआथा।

मां ने पूछा, "काका तू जहाँ मरजी है रह। तू मुसलमान हो गया है तो कोई बात नहीं पर मान तो ले तू ही मेरा बेटा है, पिन्नी।"

मैं अपने खानदान की सारी तंफसील देकर एक बार फिर हरभजन सिंह जी को नाउम्मीद करके लौट आया।

इस बात को भी सात आठ साल हो गये।

अब सन् 1993 है।

इतने अर्सा बाद इकबाल की चिट्ठी मिली और भोग का कार्ड मिला कि सरदार हरभजन सिंह जी परलोक सिधार गये। मां ने कहलाया है कि छोटे को जरूर खबर देना।

मुझे लगा जैसे सचमुच मेरे दारजी गुजर गये।